बी॰ए॰ भाग-3
हिन्दी-प्रतिष्ठा
'साधारणीकरण'

रमेश कुमार यादव
हिन्दी-विभाग
डी॰ के॰ कालेज, डुमरॉव
बक्सर, बिहार

साधारणीकरण - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।

संस्कृत काव्यशास्त्र में पंडितराज जगन्नाथ के बाद गंभीर भारतीय चिन्तन और विवेचन का युग ही समाप्त हो गया। हिन्दी के भक्त और रीति के कवि प्रायः सरलीकरण के शिकार हो गए। ध्वनि-रस-साधारणीकरण जैसे गंभीर विषयों की चर्चा की न तो उनमें सामर्थ्य थी न उनकी प्रवृत्ति। ऐसी स्थिति के कारण लगभग तीन शताब्दियों तक साधारणीकरण की चर्चा बंद रही। आधुनिककाल में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साधारणीकरण सिद्धांत पर गंभीरता से विचार किया और इस सिद्धांत को पुनरुज्जीवित किया। आचार्य शुक्ल ने अपने प्रसिद्ध लेख साधारणीकरण और व्यक्तिवैचित्र्यवाद' में साधारणीकरण सिद्धांत पर मौलिक चिंतन प्रस्तुत किया। यह चिन्तन इतना मौलिक है कि वह काव्य शास्त्र की शास्त्रबद्ध जड़ता से मुक्त होकर नवीन दृष्टि प्रदान करता है।

आचार्य शुक्ल ने साधारणीकरण की परिभाषा करते हुए लिखा कि जब तक किसी भाव का कोई विषय इस रूप में नहीं लाया जाता कि वह सामान्यतः सबके उसी भाव का आलंबन हो सके, तब तक उसमें रसोद्बोधन की पूर्ण शक्ति नहीं आती। इसी रूप में लाया जाना हमारे यहां साधारणीकरण कहलाता है। वे अन्यत्र लिखते हैं साधारणीकरण का अभिप्राय यह है कि पाठक या श्रोता के मन में जो व्यक्ति-विशेष या वस्तु-विशेष आती है वह जैसे काव्य में वर्णित

आश्रय के भाव का आलंबन होती है वैसे ही सब सह्रदय पाठकों या श्रोताओं के भाव का आलंबन हो जाती है। शुक्ल जी के अनुसार लोक हृदय की यह सामान्य अंतर्भूमि परखकर हमारे यहां 'साधारणीकरण - सिद्धांत' की प्रतिष्ठा की गई है। वह सामान्य अंतर्भूमि कल्पित या कृत्रिम नहीं है।

शुक्ल जी के अनुसार इससे सिद्ध हुआ कि साधारणीकरण आलंबनत्व धर्म का होता है। व्यक्ति तो विशेष ही रहता है पर उसमें प्रतिष्ठा ऐसे सामान्य धर्म की ही रहती है - जिसके साक्षात्कार से सब पाठकों या श्रोताओं के मन में एक ही भाव का उदय थोड़ा - बहुत होता है। विभावादि सामान्य रूप में प्रतीत होते हैं - इसका तात्पर्य यही है कि रसमग्न पाठक के मन में यह भेदज्ञान नहीं रहता कि यह आलंबन मेरा है या दूसरे का। थोड़ी देर के लिए पाठक या श्रोता का हृदय लोक का सामान्य हृदय हो जाता है।

शुक्ल जी के बाद साधारणीकरण के प्रश्न पर डॉ. नगेंद्र ने सभी कोणों से विचार किया है और कुछ मौलिक स्थापनाएं की हैं। उनकी सबसे महत्वपूर्ण स्थापना है कि जिसे हम आलंबन कहते हैं वह वास्तव में कवि की अपनी अनुभूति का संवेद्य रूप है। उसके साधारणीकरण का अर्थ है कवि की अनुभूति का साधारणीकरण जो भट्टनायक और अभिनवगुप्त का प्रतिपाद्य है। अतएव निष्कर्ष यह निकला कि साधारणीकरण कवि की अपनी अनुभूति का होता है, अर्थात् जब कोई व्यक्ति

अपनी अनुभूति को इस प्रकार अभिव्यक्त कर सकता है कि वह सभी के हृदयों में समान अनुभूति जगा सके तो पारिभाषिक शब्दावली में हम कह सकते हैं कि उसमें साधारणीकरण की शक्ति वर्तमान है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में विशेष रूप से छायावादोत्तर काल में साहित्य के आस्वाद के प्रतिमान के रूप में रस-सिद्धांत पर प्रश्न-चिह्न लगाया गया। प्रगतिवादी कवि-आलोचकों ने भी और नयी कविता के कवि-आलोचकों ने भी यह बात जोर देकर कही कि अब साहित्य को रस की कसौटी पर कसना उचित नहीं है। उन्होंने कहा कि प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य के लिए रस उपयुक्त मानदण्ड हो सकता था किन्तु समय, समाज, जीवन-स्थितियों में बदलाव के परिणाम स्वरूप अब साहित्य केवल आनंदमयी चेतना नहीं है, सुंदरता के साथ-साथ कुरूपता भी अग्राह्य नहीं है। ऐसी स्थिति में रसात्मक बोध और रस निष्पत्ति कवि के अभीष्ट नहीं है। किन्तु ये सभी आलोचक साधारणीकरण के महत्व को स्वीकार करते हैं क्योंकि यह साहित्य के संप्रेषण की अनिवार्य प्रक्रिया है।

रमेश कुमार यादव
असिस्टेंट-प्रोफेसर
डी. के. कॉलेज,
हिन्दी-विभाग
डुमराँव, बक्सर (बिहार)